जनसत्ता

कामयाबी और चुनौती

आखिरकार भारत को अपने कुछ नागरिकों के स्विस बैंक खातों तक पहुंचने में कामयाबी मिल गई। सरकार लंबे समय से इस कवायद में लगी थी कि स्विस खाताधारकों का ब्योरा पता चले और कालेधन के खिलाफ मुहिम जोर पकड़ सके। लेकिन ये सारी जानकारियां गोपनीय बनी रहेंगी, क्योंकि स्विस सरकार ने इस तरह की सूचनाओं का लेनदेन गोपनीयता की शर्तों के साथ किया है, किसी भी खाताधारक का नाम उजागर नहीं होगा। ऐसे में आमजन के मन में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि अगर सब गोपनीय ही बना रहेगा तो देश को उन लोगों के बारे में कैसे पता चलेगा जो कालेधन के कारोबार में लिप्त हैं और देश की अर्थव्यवस्था को भारी नुकसान पहुंचाने में लगे हैं। अभी जिन लोगों के खातों की खबर भारत को मिली है, उनमें ज्यादातर प्रवासी भारतीय और बड़े कारोबारी हैं। इनमें कई तो दूसरे देशों में बस चुके हैं। इसके अलावा करीब सौ ऐसे खातों की जानकारी भी दी है जो खाताधारकों ने पिछले साल बंद करा दिए थे, ताकि किसी भी कार्रवाई से बचा जा सके।

पिछले दो दशकों में भ्रष्टाचार और कालाधन भारत में बड़ा मुद्दा बना रहा है, खासतौर से चुनावों के दौरान सारे राजनीतिक दल इन दोनों मुद्दों का भरपूर इस्तेमाल करते रहे हैं। हर दल यह वादा करता रहा कि सत्ता में आते ही सबसे पहले उन लोगों को पकड़ा जाएगा जिन्होंने कालाधन विदेशी बैंकों में जमा करा रखा है, लेकिन आज तक पकड़ में कोई नहीं आया। अब भारत को स्विस बैंक से जो जानकारियां हासिल होनी शुरू हुई हैं, उनके लिए सरकार ने पिछले पांच साल में स्विटजरलैंड की सरकार पर काफी दबाव बनाया। अब सरकार के पास यह कहने को है कि स्विस बैंक में खाता रखने वालों का पता चल रहा है। ऐसे में कुछ खाताधारक पकड़े भी जा सकते हैं जिन्होंने मोटी कर चोरी की होगी और या नियम-कानूनों का उल्लंघन करके पैसा बाहर भेजा होगा। हकीकत तो यह है कि ऐसा करने वालों की तादाद कोई इक्का-दुक्का नहीं, बल्कि हजारों में है। हालांकि यह कहना सही नहीं होगा कि सारे स्विस खाताधारक कालेधन और भ्रष्टाचार में लिप्त हैं। ऐसे भी खाताधारक हैं जिन्होंने पूरी नियम-प्रक्रियाओं के तहत खाते खोले होंगे। विदेशी खाताधारकों के खिलाफ कार्रवाई किसी बड़ी चुनौती से कम नहीं है। भागे हुए आर्थिक अपराधियों को देश वापस लाने में ही सरकार के पसीने निकल रहे हैं, लंबी और जटिल कानूनी प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ रहा है तो ऐसे में स्विस बैंक के खाताधारकों में कितने और किस मामले में दोषी साबित हो पाएंगे, इसकी उम्मीद कम ही है, क्योंकि करार के तहत सब कुछ गोपनीय ही रखना है।

स्विटजरलैंड सरकार ने भारत को यह जानकारी ऑटोमैटिक एक्सचेंज ऑफ इन्फॉर्मेशन (एईओआइ) के तहत दी है। यह करार उसने दुनिया के पचहत्तर देशों के साथ कर रखा है। लेकिन भारत को इस करार के तहत स्विस बैंक में खाता रखने वाले अपने नागरिकों का ब्योरा पहली बार मिला है। इस करार का बड़ा फायदा इस रूप में देखा जाना चाहिए कि अब स्विस बैंक में खाता रखने वाले भारत सरकार की नजरों से बचे नहीं रह पाएंगे। हालांकि कालेधन की समस्या से निपट पाना आसान नहीं है, लेकिन एक सीमा तक इस तरह की गतिविधियों पर अंकुश जरूर लगाया जा सकता है। इसके लिए आर्थिक अपराधों से निपटने वाले उस तंत्र को मजबूत करने की जरूरत है, जिसकी लापरवाही और मिलीभगत से कालेधन के कारोबारी स्विस बैंक में पूंजी के पहाड़ खड़े करते रहे हैं।

अनधिकृत कब्जा

देश की राजधानी दिल्ली के केंद्र में स्थित सरकारी बंगलों में नियमों के विरुद्ध कब्जा जमाने की शिकायतें लंबे से कायम रही हैं। अक्सर ऐसी खबरें आती रहती हैं कि लोकसभा या राज्यसभा के सांसद अपनी सदस्यता की अवधि खत्म होने के बाद भी इन बंगलों को खाली करने में टालमटोल करते रहते हैं। ऐसे में नए चुने गए सांसदों को आवास मिलने में मुश्किल पेश आती है और फिर शिकायतों के दायरे का विस्तार होता है। पिछले कुछ दिनों से दिल्ली के लुटियंस जोन में स्थित सरकारी बंगलों को खाली कराने के लिए संबंधित महकमे की कोशिश जारी है और करीब सवा दो सौ पूर्व सांसदों से आवास खाली कराने की कार्रवाई शुरू की गई थी। लेकिन अब भी हालत यह है कि बार-बार नोटिस भेजने के बावजूद लगभग चालीस पूर्व सांसदों ने सरकारी बंगले खाली नहीं किए हैं। आखिर इन सांसदों के सामने किस तरह की मजबूरी है कि उन्हें आवास खाली करने में दिक्कत हो रही है? जबकि उन्हें खुद भी इस बात का अंदाजा होगा कि ऐसी स्थिति में प्रशासन कानूनन क्या कदम उठा सकता है!

विडंबना यह है कि जरूरत और कानून की कसौटी पर वस्तुस्थिति से परिचित होने के बावजूद सरकारी बंगलों में काबिज सांसदों को अपनी ओर से निर्धारित समय पर आवास खाली करना जरूरी नहीं लगता। शायद यही वजह है कि अब आवास व शहरी मामलों के मंत्रालय को पूर्व सांसदों के घर पुलिस की मदद से जबरन खाली कराने की कार्रवाई शुरू करनी पड़ी है। मंत्रालय के संपदा विभाग ने सरकारी आवास के आबंटन की पात्रता नहीं रखने वालों से बंगला खाली कराने के लिए हाल ही में संशोधित सार्वजनिक परिसर (अनधिकृत कब्जाधारियों की बेदखली) अधिनियम के तहत सोमवार को सख्ती से बेदखली की प्रक्रिया शुरू की है। इस मसले पर सांसदों की लापरवाही का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि पिछले दिनों लोकसभा की आवास समिति ने पूर्व सांसदों को सात दिनों के अंदर अपने आधिकारिक आवास खाली करने के निर्देश दिए थे और ऐसा नहीं करने की स्थिति में सांसदों के बंगले में बिजली, पानी और गैस कनेक्शन तीन दिन में काट लेने की बात कही थी। निश्चित रूप से यह एक अच्छी स्थिति नहीं है और संबंधित महकमों के सामने ऐसा करने की नौबत नहीं आनी चाहिए। लेकिन आखिर वे कौन-सी वजहें हैं कि नियम-कायदों से परिचित होने के बावजूद सांसदों को समय पर बंगला खाली करना जरूरी नहीं लगता है?

गौरतलब है कि अनधिकृत रूप से सरकारी आवासों के इस्तेमाल के मसले से निटपने के लिए नए कानून में प्रभावी प्रावधान किए गए हैं। यों आबंटन नियमों के मुताबिक आबंटी का कार्यकाल समाप्त होने के बाद आवास खाली नहीं करने पर उसे अनधिकृत कब्जे की श्रेणी में रखा जाता है। संशोधित कानून लागू होने से पहले की प्रक्रिया के तहत सरकारी आवास खाली कराने में पांच से सात सप्ताह का समय लगता था। लेकिन यह किसी से छिपा नहीं है कि अलग-अलग कारणों का हवाला देकर कई सांसद इससे काफी ज्यादा अवधि तक इन बंगलों में काबिज रहते थे। यों एक आदर्श स्थिति यह है कि अगर लोकसभा या राज्यसभा के किसी सांसद का कार्यकाल समाप्त होता है तो एक निर्धारित अवधि के बाद वह खुद ही उस आवास को खाली कर दे। लेकिन बहुत सारे सांसदों के मामले में वास्तविकता इससे इतर है। यह एक जनप्रतिनिधि के रूप में अपने राजनीतिक कद-पद का तो दुरुपयोग है ही, इससे खुद उनके बारे में समाज में गलत संदेश जाता है।

कल्पमेधा

मैं इसलिए आगे निकल पाया कि मैंने उन लोगों से ज्यादा गलतियां कीं जिनका मानना था कि गलती करना बुरा था या गलती करने का मतलब था कि वे मूर्ख थे।
-रॉबर्ट कियोसाकी

क्यों नहीं चाहते बेटियां

मोनिका शर्मा

घर-परिवार से लेकर समाज के माहौल तक, आज भी बेटियों के जन्म को लेकर न तो सकारात्मकता दिखती है और न ही दिली स्वीकार्यता। कभी भ्रूण हत्या तो कभी बेटियों को कूड़े के ढेर में छोड़ देने की असंवेदनशील और अमानवीय घटनाएं भी जब-तब सामने आती रहती हैं।

जिस समाज में बेटियों को दुनिया में आने का हक न मिले, वहां उनके दूसरे मानवीय अधिकारों की बात करना बेमानी है। अफसोस कि बेटे-बेटी के फर्क की बदौलत उपजी मानसिकता की मौजूदगी आज भी भारतीय समाज की कटु सच्चाई बनी हुई है। तभी तो लिंग परीक्षण और भ्रूण हत्या जैसी कुरीतियां न केवल अपनी जड़ें जमाए हुए हैं, बल्कि देश में बने सख्त कानूनों के चलते इन्हें अंजाम देने के लिए नए रास्ते भी खोजे जा रहे हैं।

हाल में राजधानी दिल्ली में पुलिस और स्वास्थ्य विभाग की टीम द्वारा एक कॉल सेंटर पर छापा मारने पर ऐसा ही दुखद और हैरान करने वाला सच सामने आया है। इस कॉल सेंटर में आइवीएफ के जरिए महिलाओं को शत-प्रतिशत बेटा पैदा करने की गारंटी दी जाती थी। मोटी रकम वसूल कर बच्चे के लिंग की जांच का इंतजाम किया जाता था। गौरतलब है कि हमारे देश में लिंग परीक्षण के लिए कड़े कानून बने हुए हैं। ऐसे में इस अमानवीय गोरखधंधे से जुड़े लोगों ने महिलाओं को विदेश भेज कर लिंग परीक्षण करवाने का रास्ता निकाल लिया। महिलाओं को उन देशों में भेजा जाता था, जहां गर्भ में पल रहे बच्चे का लिंग परीक्षण कराना गैर-कानूनी नहीं है। जांच में सामने आया कि इस आइवीएफ सेंटर के माध्यम से महिलाओं को मनचाही संतान पाने के लिए दुबई, सिंगापुर और थाईलैंड जैसे देशों में भेजा जाता था। राष्ट्रीय स्तर पर जाल फैलाए इस गिरोह का देश भर में करीब एक सौ आइवीएफ केंद्रों के साथ जुड़ाव था। कहने को प्रगतिशील और बदलाव की राह पर आगे बढ़ रहे हमारे समाज में परंपराओं और रूढ़ियों की जकड़न देखिए कि इस कॉल सेंटर के माध्यम से परीक्षण के लिए अभी तक करीब छह लाख लोगों को विदेशों में भेजा जा चुका है। ऐसे हालात तब हैं जब लिंगानुपात राष्ट्रीय स्तर पर चिंता का विषय बना हुआ है।

दरअसल, बेटियों की सहज स्वीकार्यता न होने की यह स्थिति इस हकीकत को पुख्ता करती है कि हमारे समाज में विचार और व्यवहार के स्तर पर दोहरे मानक बने हुए हैं। कथनी और करनी का यह अंतर बेटियों के जीवन का दुश्मन बन गया है। नतीजतन, पितृसत्तात्मक सोच वाले हमारे सामाजिक ढांचे में बहुत कुछ बदल कर भी कुछ न बदलने की स्थितियां बनी हुई हैं। कुछ समय पहले आई यूनिसेफ की एक रिपोर्ट के मुताबिक सुनियोजित लिंगभेद के कारण भारत की आबादी से करीब पांच करोड़ लड़कियां और महिलाएं गायब हैं। अफसोस कि बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ के नारे तो लगते हैं, पर कन्या भ्रूण हत्या जैसी कुरीतियां भी जड़ें जमाए हुए हैं। तभी तो बेटे पैदा करने की चाह में लोग एजेंटों को मोटी रकम चुका कर विदेश तक जा रहे हैं।

राष्ट्रीय औसत के अनुसार देश में प्रति एक हजार लड़कों के पीछे नौ सौ तियालीस लड़कियां हैं। कई प्रांतों में यह औसत काफी कम है। बीते साल आई नीति आयोग की रिपोर्ट के मुताबिक देश के इक्कीस बड़े राज्यों में से सत्रह राज्यों में लिंगानुपात का आंकड़ा असंतुलित है। रिपोर्ट के मुताबिक इन सत्रह प्रांतों में लिंग अनुपात दस अंक गिरा है। 'स्वस्थ राज्य, प्रगतिशील भारत' की रिपोर्ट 2015-16 के अनुसार गुजरात के अलावा हरियाणा में भी लिंगानुपात में भारी गिरावट आई है। गौरतलब है कि नीति आयोग भी असंतुलित होते लिंगानुपात पर चिंता जताते हुए कह चुका है कि लिंगानुपात में सुधार लाने के लिए लोगों को बेटियों के महत्त्व को समझना होगा और जागरूकता लानी होगी।

चिंतनीय है कि बेटियों को गर्भ में मार डालने का कृत्य आपराधिक मामला भर नहीं है। यह पूरे समाज का ताना-बाना बिगाड़ने वाली सोच है। लिंगानुपात का असंतुलन कई मोर्चों पर चिंता का विषय बन रहा है। कई प्रदेशों में बेटों के लिए दुल्हन नहीं मिल रही है। दूसरे राज्यों से दुल्हन लाकर बेटों का घर बसाया जा रहा है। इतना ही नहीं, बेटे और बेटी में किए जाने वाले भेदभाव की मानसिकता के चलते आज भी दूर-दराज के गांवों में तो बेटियों की शिक्षा और स्वास्थ्य को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। समग्र रूप से देखा जाए तो हमारे समाज में कुपोषित बच्चियों का प्रतिशत काफी ज्यादा है। हर क्षेत्र में अपनी काबिलियत के बल पर पहचान बना कर आगे बढ़ती बेटियां आज भी अपने अस्तित्व के लिए जूझती नज़र आ रही हैं। मोर्चे पर खुद को साबित करने के बावजूद बेटियों की यह जंग उनके जन्म लेने से पहले ही शुरू हो जाती है।

देश का सबसे बड़ा जनसांख्यिकीय सर्वेक्षण बताता है कि आज भी समाज में बेटियां, जन्म लेने से लेकर परवरिश पाने तक हर तरह के भेदभाव की शिकार हैं। यह दुखद ही है कि साक्षरता के बढ़ते आंकड़े, तकनीक की पहुंच और बदलते सामाजिक-पारिवारिक परिवेश में भी बेटियों को लेकर सोच जस की तस बनी हुई है। कुछ समय पहले भारत के महापंजीयक की ओर से करवाए गए वार्षिक सर्वे (एसआरएस) में यह बात सामने आई थी कि बालिका भ्रूण हत्या जैसी सामाजिक विकृति देश के सबसे समृद्ध और शिक्षित राज्यों में भी मौजूद है। इसका सीधा-सा अर्थ है कि लोगों की मानसिकता में बदलाव आना जरूरी है।

भ्रूण हत्या और लिंगभेद के खिलाफ तमाम सरकारी अभियानों और सामाजिक जागृति लाने के प्रयासों के बावजूद लिंगानुपात में भारी गिरावट आ रही है, क्योंकि देश में बने कानूनों का तोड़ निकाल कर लिंग परीक्षण के नए मार्ग तलाश लिए गए हैं। संगठित गिरोह की तरह काम करने वाले ऐसे एजेंट मोटी कमाई करने के लिए बेटियों के जन्म को बाधित करने की सोच रखने वाले परिवारों की राह आसान बना रहे हैं। आखिर क्यों बेटियों के स्वागत और सम्मान का माहौल आज भी केवल एक उम्मीद भर है? घर-परिवार से लेकर समाज के माहौल तक, आज भी बेटियों के जन्म को लेकर न तो सकारात्मकता दिखती है और न ही दिली स्वीकार्यता। कभी भ्रूण हत्या तो कभी बेटियों को कूड़े के ढेर में छोड़ देने की असंवेदनशील और अमानवीय घटनाएं भी जब-तब सामने आती रहती हैं।

सवाल है, आखिर ऐसा क्यों है कि खेलों से लेकर अंतरिक्ष तक प्रभावी दखल रखने और कीर्तिमान बनाने वाली बेटियों के लिए दुनिया में आने से पहले ही संघर्ष का सफर शुरू हो जाता है? बेटी का जन्म क्यों परिवारजनों के माथे पर शिकन ले आता है? अफसोस इस बात का है कि गांवों-कस्बों में ही नहीं, पढ़े-लिखे शहरी परिवारों को भी बिटिया की चाह नहीं है। यही वजह है कि इसका हल सरकारी अभियान और कानूनी सख्ती से ज्यादा सामाजिक सोच में संवेदनशीलता आने से निकल पाएगा। साथ ही, लिंग अनुपात दुरुस्त करने के लिए सामाजिक परिवेश को सुरक्षित और महिलाओं के लिए सम्माननीय भी बनाना होगा। बेटे की चाहत ही नहीं दहेज, बढ़ते महिला अपराध, लैंगिक असमानता और सामाजिक भेदभाव ऐसे बड़े कारण हैं जो बेटियों की स्वीकार्यता में बाधक बनते हैं। बेटियों के साथ जन्म से पहले ही दोयम दर्जे का व्यवहार न हो इसके लिए लोगों की भावनाओं का बदलना आवश्यक है। भावनात्मक संवेदनशीलता लड़कियों के प्रति समाज का नजरिया बदलने में सकारात्मक और सहयोगी साबित होगी। यों भी बेटियों की शिक्षा, सम्मान और उनके सर्वांगीण विकास के लिए ऐसे ही परिवेश की दरकार है। हमारे यहां सामुदायिक स्तर पर बेटियों के प्रति मौजूद भेदभाव और असंवेदनशील माहौल के चलते ही मां-बाप को लड़कियां जन्म से पहले ही भार लगने लगती हैं। यह एक जमीनी हकीकत है कि आज भी गांवों-कस्बों से लेकर महानगरों तक बेटियों की सुरक्षा और उनके प्रति कुंठित सोच से उपजी समस्याएं कम नहीं हैं। निस्संदेह यह कुरीति सामूहिक सहभागिता और इससे जुड़े समस्त पहलुओं पर जागरूकता आने से ही दूर हो पाएगी।

स्मृतियों के कोने में

अरुणेंद्र नाथ वर्मा

तुम्हें अलविदा बहुत पहले कह देना था। पता नहीं, सिर्फ मेरी कमजोरी थी या तुमसे दोस्ती कि सालों पहले ठंडी पड़ चुकी राख में छिपी वे कुछ चिनगारियां, जिन्होंने मुझे तुमसे पूरी तरह बिछुड़ने नहीं दिया। कितनी बार सोचा कि बाकी लोगों की तरह मैं भी विस्मृति के दरिया में बहा कर तुम्हारे सान्निध्य से मुक्ति पा लूं। लेकिन जब भी तुम्हें लिखने की मेज से उठा कर घर के किसी सूने कोने में नाकाम प्यार के पुराने खतों की तरह छिपा देने के बारे में सोचता, मन-मस्तिष्क में शायर निदा फाजली के शब्द गूंज उठते- 'कहीं कुछ भी नहीं बदला/ तुम्हारे हाथ मेरी अंगुलियों में सांस लेते हैं/ मैं लिखने के लिए जब भी कागज-कलम उठाता हूं/ तुम्हें बैठा हुआ मैं अपनी कुर्सी में पाता हूं/ तुम्हारी कब्र पर जिसने तुम्हारा नाम लिखा है/ वो झूठा है, वो झूठा है, वो झूठा है! तुम्हारी कब्र में मैं दफन/ तुम मुझमें जिंदा हो/ कभी फुर्सत मिले तो फातिहा पढ़ने चले आना।'

अच्छा संयोग था कि मुझे कभी किसी दफ्तर में बाबूगिरी नहीं करनी पड़ी। तुम्हारी जरूरत महसूस कैसे करता, जब वायुसेना की उड़ानें भरने के प्रारंभिक दिनों में ज्यादा लिखना-पढ़ना होता ही नहीं था। लेकिन एक बार लंबे वार्षिक अवकाश में अपने शहर गया तो एक टाइपराइटिंग स्कूल में एक पुराने सहपाठी को तुम्हारे किसी भाईबंद के साथ व्यस्त देखा। तुम्हारे कुनबे में दिलचस्पी जगी तो मित्र ने कहा क्यों न इससे भी दोस्ती कर लो। सुझाव अच्छा लगा। पहली बार उस अंग्रेजी मशीन पर अंगुलियां फेरीं तो कौतूहल जगा कि की-बोर्ड के अक्षर वर्णमाला के क्रम में क्यों नहीं थे। यह भी कोई बात हुई कि क्यू के बाद डब्ल्यू, ई, आर, टी आ जाएं!

दुनिया मेरे आगे

प्रशिक्षक ने समझाया कि की-बोर्ड पर अक्षरों का क्रम तय करने के पीछे सघन वैज्ञानिक अध्ययन था। अंग्रेजी वर्णमाला के सबसे अधिक इस्तेमाल में आने वाले अक्षरों को सबसे अधिक सक्षम और चपल दसों अंगुलियों से दूर रखा गया था, ताकि उनका अतिशय जोर टाइप के अक्षरों को नुकसान न पहुंचाए। रेमिंगटन कंपनी की यह पसंद बाद में सबके लिए मानक बन गई। फिर एक नया राज भी खुला कि 'अ क्विक ब्राउन फॉक्स जंप्स ओवर द लेजी डॉग', यानी वाक्य में वर्णमाला का हर अक्षर समाहित था। जल्दी ही अंगुलियों को उन बटनों पर फेरने में मजा आने लगा।

हां, तुम्हारे यानी टाइपराइटर की धड़कन में गूंजती क्लिक-क्लिक किसी नृत्य के दौरान किसी के थिरकते पैरों के साथ बजते घुंघरुओं की याद दिलाने लगी। इधर टंकन को गति मिली, उधर हाथों में कलम पकड़ना खलने लगा। फिर भी वायुसेना में उन प्रारंभिक दिनों में इतनी लिखत-पढ़त नहीं करनी होती थी कि इस नए कौशल का सदुपयोग होता। तभी एक बार विदेश जाना हुआ जहां उन दिनों की पसंदीदा इलेक्ट्रॉनिक वस्तुएं सस्ती मिलती थीं। मेरे साथियों ने 'टू-इन-वन' और टेपरिकार्डर खरीदे, लेकिन मेरी आंखें तुम्हारी तन्वंगी आकृति में उलझ कर रह गईं। तुम पोर्टेबल यंत्र थे- लाल, पीले कई मनभावन रंगों में उपलब्ध। पहली नजर में हो गए इस प्रेम में डूब कर तुम्हारे साथ खेलने में अनोखा आनंद आने लगा। तुमने अभिन्न मित्र बन कर मुझे लेखक बना दिया, लेकिन हिंदी लेखन की मेरी इच्छा तुम पूरी नहीं कर पाते थे।

समय बलवान होता है। कब अतृप्त प्यास को मिटाने के लिए एक नया नवेला लैपटॉप तुम्हारी जगह पर आसीन हो गया, पता नहीं चला। तुम मेरी गलतियां छिपा नहीं पाते थे। कुछ भूल हो जाती तो उसे सफेद फ्लुइड से मिटाना पड़ता था और कागज पर एक बदनुमा धब्बा छूट जाता। वर्तनी और व्याकरण की अशुद्धियां देख कर भी तुम अनजान बने रहते थे, लेकिन नया लैपटॉप उनके प्रति सचेत था। हद तो तब हुई जब बिना हिंदी की-बोर्ड पर अभ्यास किए 'गूगल इनपुट टूल' के सहारे मैं हिंदी, अंग्रेजी दोनों लिपियों के आकाश में उड़ानें भरने लगा।

देखते-देखते तुम किसी नए मेहमान के सामने तिरस्कृत पुराने सदस्य की तरह मेरी मेज पर मुंह छिपा कर पड़े रहने लगे। तुम्हें देख कर मेरा पुराना प्यार उमड़ आता। मैं अपराधी-सा महसूस करने लगता। आखिर में इस अपराधबोध से मुक्त होने के लिए मैंने सोचा कि तुम्हें किसी को उपहार में दे डालूं। लेकिन इतनी देर हो चुकी थी कि तुम्हें पाने का कोई इच्छुक मिलना असंभव हो गया।

मुझे उस पुराने भोंपू वाले ग्रामोफोन का ध्यान आया, जिसे पत्नी ने चमका कर बैठक में सजावटी धरोहर के तौर पर रख दिया था। लेकिन ऐसी सजावट के लिए तुम उसे अनुपयुक्त लगे। काश, घर इतना बड़ा होता कि हर उस चीज को, जिसे मैंने कभी शिद्दत से चाहा था, सदा के लिए अपना बना कर रख सकता। क्या करूं दोस्त! तुम्हे अलविदा कह कर कहां भेज दूं? जब तुम मेरी मेज से हट जाओगे, तो क्या निदा फाजली के शब्दों को दुहरा कर मैं खुद को ठग पाऊंगा कि 'वो तुम कब थे? कोई सूखा हुआ पत्ता, हवा में गिर के टूटा था।'

समता का तकाजा

इन दिनों केंद्र और राज्य सरकारें अपने विभिन्न विभागों में काम करने के लिए विभिन्न शासकीय पदों पर संविदा या दैनिक वेतन भोगी के रूप में अनुबंधित कर्मचारियों की भर्ती करती हैं। ये पद अस्थायी होते हैं जो एक निश्चित समय तक के लिए बनाए जाते हैं। उसके बाद सरकार या तो इन कर्मचारियों को हटा देती है या प्रतिवर्ष इनके करार को बढ़ाती रहती है। ऐसे कर्मचारियों को सरकार की तरफ से इन्य कर्मचारियों जैसी सुविधाएं मुहैया नहीं कराई जातीं। इनके वेतन भी स्थायी कर्मचारियों की तुलना में काफी कम रहते हैं। विभागों में कार्य करने वाले नियमित कर्मचारी भी इनसे अत्यधिक काम लेते हैं और ये भविष्य में नियमित होने के लोभ में आकर निरंतर बेहतर कार्य करते रहते हैं।

इन पदों पर कार्य करने वाले कर्मचारियों की मानसिकता यह रहती है कि हमारे बेहतर काम और अधिकारियों की प्रशंसा से हम एक दिन नियमित हो जाएंगे। ऐसी अस्थायी और अनुबंधित भर्तियों से कर्मचारियों का सिर्फ शोषण होता है। शासन द्वारा कम वेतन देना, सुविधाओं से वंचित रखना, नौकरी में अस्थिरता रहना इनके लिए सबसे बड़ी समस्या बना रहता है। सुप्रीम कोर्ट ने समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धांत पर मुहर लगाते हुए कहा है कि अस्थायी कर्मचारी भी स्थायी की तरह मेहनताना पाने के हकदार हैं। फिर भी सरकार इस सिलसिले में न तो कोई कदम उठा रही है और न किसी प्रकार की दिलचस्पी दिखा रही है। लिहाजा, वर्तमान की जरूरत है कि पदों पर स्थायी भर्ती की जाए। अगर अनुबंध के तौर पर काम कराया जा रहा है तो उन्हें स्थायी कर्मचारियों की तरह वेतन और सुविधाएं भी दी जाएं। इससे न सिर्फ वे आर्थिक और सामाजिक रूप से मजबूत होंगे, बल्कि सरकारी विभागों में काम करने के लिए लोगों को एक अनुकूल माहौल भी मिलेगा ।

● *अमित पांडेय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़*

अपने भीतर

यक्ष प्रश्न यह है कि हम एक अरब पैंतीस करोड़ भारतीय हर साल बुराई के प्रतीक रावण के हजारों-लाखों पुतलों को जला कर बुराई पर अच्छाई की जीत का जश्न दशहरा खूब धूमधाम से मनाते हैं तो फिर अगले साल ये हजारों-लाखों रावण क्यों और कहां से पैदा हो जाते हैं! उन्हें फिर से जलाने की जरूरत क्यों आ पड़ती है? दरअसल, हमें अपने भीतर मौजूद बुराइयों रूपी रावण को मारना चाहिए और इसके लिए सबसे पहले अपने मन, वचन और कर्म से पवित्र और ईमानदार होना पड़ेगा।

● *निर्मल कुमार शर्मा, गाजियाबाद*

घुसपैठ पर लगाम

लोकसभा में गृहमंत्री के वक्तव्य और बांग्लादेशी प्रधानमंत्री शेख हसीना की भारत यात्रा के बाद राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर का मुद्दा फिर चर्चा के केंद्र में है। दरअसल, देश में अवैध घुसपैठियों का प्रवेश आजादी के बाद से एक गंभीर समस्या रहा है। खासतौर पर बांग्लादेश सीमा से सटे राज्य इस विभीषिका को ज्यादा झेल रहे हैं। राजधानी दिल्ली में भी घुसपैठियों ने अपना डेरा जमा रखा है। पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा, मेघालय, ओडीशा, छत्तीसगढ़ आदि राज्य इस समस्या का सामना कर रहे हैं। एक अनुमान के अनुसार इस समय देश में अवैध घुसपैठियों की संख्या दो करोड़ से ज्यादा बताई जाती है। प्रतिवर्ष इस संख्या में इजाफा हो रहा है। असम में सुप्रीम कोर्ट की निगरानी में राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर का कार्य लगातार अद्यतन किया जा रहा है। संविधान के अनुच्छेद पांच से ग्यारह के प्रावधानों और नागरिकता कानून 1955 के अनुसार देश की नागरिकता से संबंधित प्रावधान सख्ती से लागू हों।

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

अफसोस की बात है कि कई विपक्षी दल वोट बैंक की राजनीति से जोड़ कर इस पर सवाल खड़े कर रहे हैं। वैसे पहले ही बड़ी आबादी वाले देश के लिए अवैध घुसपैठियों को झेलना भारी पड़ सकता है। अब जरूरत है कि आधार की तरह एक राष्ट्रीय नागरिक डिजिटल कार्ड बने। सीमाओं पर बाड़ लगाने का काम जल्द निपटाए ताकि अवैध घुसपैठियों पर पूर्ण रूप से रोक लग सके।

● *बिजेंद्र कुमार, दिल्ली विश्वविद्यालय*

रैबीज से बचाव

राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्रोफाइल के आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2017 में जापानी एंसेफेलाइटिस 12 फीसद और स्वाइन फ्लू 6 फीसद की तुलना में रैबीज ही एक ऐसी बीमारी रही जिसके कारण मरने वालों की संख्या इससे संक्रमित होने वालों की संख्या के बिलकुल समान रही अर्थात सौ प्रतिशत मृत्यु दर वाली बीमारी रैबीज रही। रैबीज से होने वाली मौतों के ये आंकड़े बेहद चिंताजनक हैं। आज नई-नई संक्रामक बीमारियां आ जाने के कारण सबसे पुराने व सभी जगह पाए जाने वाले रैबीज वायरस की ओर से लोगों का ध्यान हट गया है जबकि रैबीज के रोगियों की संख्या में लगातार इजाफा होता जा रहा है। रैबीज वायरस के वाहक सामान्यतः संक्रमित कुत्ते, घोड़े, बंदर होते हैं जिनके संपर्क में जनता लगातार बनी रहती है। रैबीज के वाहक के रूप सर्वाधिक चर्चित श्वान (कुत्ते) देश में प्रत्येक भाग में पाए जाते हैं। रैबीज संक्रमण का शिकार होने के सबसे अधिक मामले कुत्ते के काटने के होते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा जारी स्वास्थ्य सबंधी दस प्रमुख वैश्विक संकटों की सूची में रैबीज वायरस से होने वाला संक्रमण भी शामिल है लिहाजा रैबीज पर नियंत्रण के लिए देश में व्यापक स्तर पर जागरूकता अभियान चलाया जाना चाहिए है। साथ ही इसकी रोकथाम के ठोस प्रबंध करने होंगे। कुत्तों की आबादी पर नियंत्रण का सर्वोत्तम उपाय उनकी नसबंदी रहा है। इसके लिए सभी ग्राम पंचायतों व नगर निकायों को पर्याप्त अधिकार दिए गए हैं लेकिन समुचित प्रशिक्षण और धनराशि के अभाव जैसी बुनियादी समस्याओं के कारण नसबंदी का कार्य अंजाम तक नहीं पहुच पाता। प्रशासनिक स्तर पर इन दिक्कतों को दूर करना होगा। रैबीज संक्रमित व्यक्ति के समुचित इलाज के लिए अस्पतालों में पर्याप्त मात्रा में रैबीज रोधी दवाओं की उपलब्धता भी सुनिश्चित करनी होगी।

● *ऋषभ देव पांडेय, पामगढ़, छत्तीसगढ़*